UNIVERSAL
LIBRARY
OU_178152
UNIVERSAL
LIBRARY

चिन्गारियां

लेखक—

कहानीकार, कवि, लेखक तथा चित्रकार

श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

प्रकाशक—

विजयवर्गीय कलामण्डल

जयपुर

१९४९

मूल्य २)

विजयवर्गीय की कहानियां

अलकावली

चिन्गारियां

शतदल

विजयवर्गीय पिक्चर अल्बम

विजयवर्गीय ,, ,,

,, ,, ,,

चित्रकला का आध्यात्मिक स्वरूप

राजपूताना प्रिंटिंग एण्ड पबलिशिंग वर्कस,

चौड़ा रास्ता जयपुर ।

परिचय

जीवन के निरन्तर चलते हुवे क्रम में, दिन और रातों की पुनरावृत्तियों में, वह भी एक सन्ध्या थी जिस के ललाट पर किसी अस्पष्ट भाषा में इन भावनाओं का इतिहास लिखा हुआ था। वह भी रात्रि का एक अन्तिम प्रहर था, जिसके अधर सम्पुट कुछ कह देने के लिये बैचेन हो उठे थे, वह भी प्रभात की एक पहिली किरण थीं, जो मुस्कान की तरह जमीन से आसमान तक छागई, वह भी मध्यान्ह की गरम सासों में तडपती हुई एक परेशानीं थी जो खामोशी के पहलू में चुप होकर बैठ गई, और फिर वही दिन का तृतीय प्रहर जो हजारों वीणाओं के स्वर अपने कलेजे में भर कर हंसते हंसते रो उठा, जिसकी प्रत्येक प्रेरणा एक दर्द भरे दिल में आग पैदा कर रही थी उस ही आग से निकली ये चिन्गारियां है।

जिन प्रेरणाओं के आधार पर मेरे अन्तर में यह ज्वार आया वह किसी अनाहूत और अचिन्त्य मुहूर्त का वह क्षण था जिसकी न कोई सम्भावन थी न कोई आवश्यकता, पर वह आया और आया भी ऐसा वेग लेकर ऐसी पीडा लेकर इतना भार लेकर कि इन कविताओं ने बिना किसी आयास के छन्दों की शृङ्खला मे बंधकर स्वतः ही व्यक्त होने का मार्ग ढूंढ निकाला, न इन्होंने काव्य के मर्म को समझा, न समाज की आवश्यकताओं पर दृष्टि पात किया, न अधिकार की सीमा को देखा, ये तो शैल के वक्ष से फूट निकले निर्झर की तरह वह निकलीं।

प्रेरणा भी विचित्र है कि कभी एक पत्थर से कठोर हृदय से या पत्थर के टुकड़े ही से मिल जाती हैं और कभी सुन्दर से सुन्दर वस्तु, यहां तक कि उर्वशी सामने आजाय तब भी उदासीन रहती है। कवि की प्रेरणा को

वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया जाय तो सम्भव हैं बड़ी निराशा का सामना करना पड़े, क्योंकि वह स्वयं नहीं जानता कि साधारण सी बात क्यों उसे कभी कभी इतना प्रभावित कर डालती है, और व्यक्त होकर ही रहती है। जिसमें न कोई उद्देश्य छुपा रहता हैं, न कोई उपयोग, तब भी हृदय का व्यक्तीकरण काव्य के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

मीराँ के शालिग्राम को देख कर कौन विश्वास करेगा कि इस काले रंग की लोढी में उसका गिरधर गोपाल छुपा बैठा है। कालिदास के मेघ दर्शन में यक्ष की सुकुमार कल्पना करवट ले रही है ।

कवि के हृदय मे कौड़ी और काञ्चन का नीर क्षीर विवेक भी एक लम्बी यात्रा तय कर लेने पर जागृत होता है जहां तक चल कर वह वापस नहीं लौट सकता।

उसके सौन्दर्य का दृष्टि कोण भी सर्वथा भिन्न होता है। जिसे दुनियां उपेक्षा की दृष्टि से देखती है वह उसके लिये प्राण तक दे सकता है, जिसे दुनियां सर्वोत्तम समझती है उसकी ओर से वह मुंह फेर कर चला जाता है। वह जिस बात को अच्छी समझता है या जिस ओर उसका हृदय आकर्षित हो जाता है उस वस्तु को, उस आधार को वह आसमान तक ऊंचा उठा देता है। जिस विषय को लेना है सौन्दर्य की अन्तिम सीमा तक ले जाकर छोड़ता है। कवि ने ही आनन्द की उस दुनियां का निर्माण किया है जिसकी एक झलक संसार की विभीषिकाओं को मधुरतम बना डालती है। यदि कवि का संसार न होता तो जन्म और मृत्यु के निरन्तर क्रम में बँधे मानव के लिये रखा ही क्या था, मानव पत्थर की चट्टान होता, यदि कवि उसे पग २ पर सौन्दर्य और आनन्द का संकेत न करता, कवि ही के कौशल ने पशु, पक्षी-कीट, पतंग कण्टक और करील जैसे वृक्षों को संसार की अनुपम वस्तु बना डाला है उसने तो निराकार भगवान को भी स्वर्ग से खेंच कर अपनी प्रेयसी के समीप ला खड़ा किया है।

एक उर्दू कवि कितने चमत्कार से कहता है—

"गर मेरे बुते होश रुबा को नहीं देखा,
उस देखने वाले ने खुदा को नहीं देखा

उसकी प्रेयसी और ईश्वर मानों एक ही वस्तु हैं। लोक, लाज, मान अपमान तक से उसे टक्कर लेनी पड़ती है। वह अपनी मस्ती में कुछ कहे जाता है और दुनियां वाल की खाल खेंचने का प्रयत्न करती हैं। कभी कभी वह खीझ कर बच्चन जी के शब्दों में कहता है।

मृत्तिका की पुतलियों से आज क्या अभिसार मेरा ?

पर मैं तो इतना भी विश्वास दिलाने को तैयार नहीं हूं जब कि अल्लाह भी मजनूं को लैला नजर आता हैं तो बाक़ी क्या रह गया, इन कविताओं में भी अल्लाह लैला बन गया है, या लैला अल्लाह बन गयी हैं मेरे खुद समझ में नहीं आता।

रामगोपाल विजयवर्गीय
तारीख २०—१०----४६
जयपुर

समर्पण

जिसको समय इतना नहीं,
ले देख अन्तर की जलन ।
अर्पित उसी के हास को,
यह अश्रुओं का संकलन ॥

मानता हूं निम्न मेरे प्रणय गीतों का स्वर ।
रूप में अनुरक्ति मेरी वासना-रस युक्त स्वर ।।

उठ सका इतना न ऊंचा;
मैं कि छू लेता गगन को ।
शक्ति शाली मैं नहीं इतना,
पकड लेता पवन को ।।

गति नही मुझ में कि दूर,
अनन्त के मैं पार जाता ।
जीतने उठता स्वयम को,
भय कि सम्भव हार जाता ।।

दृष्टि में आता नहीं,
आकार हीन विकार कोई ।
बस रहा मेरे दृगों में;
रूप का सन्सार कोई ।।

दीप की उज्वल प्रभा को,
छोड जाऊं निबिड तम में।
क्यौं गणित के अङ्क गिनता;
व्यर्थ बंध जाऊं नियम मे।

चाहता हूं मैं किसी के मधुरिमा मिश्रित अधर।
मानता हूं निम्न मेरे प्रणय गीतों का स्तर॥

यह विराट् स्वरूप मानो,
है किसी की चपल चितवन।
इस प्रकृति पट पर किसी के;
चित्र जाते हैं स्वतः बन॥

मैं किसी का रुप पारावार,
पीने को तृपा तुर।
एक ही साकार का;
आकार होने को विकल उर।

रुप और स्वरुप के,
दो भेद मैं कब मानतां हूं।
वृहत् सीमा हीन को;
सीमा सहित पहिचानता हूँ॥

आ रहा कोई किसी का,
रुप बन मेरे हृदय में।
देख। हूं मैं उदय की;
भावना सम्पूर्णलय में॥

चाहता हूँ मैं किसी का रूप पीलूँ नयन भर।
मानता हूँ निम्न मेरे प्रणय गीतों का स्तर॥

मैं महत्ता, देखता आसीन,
लघुता के निकटतर।
अल्प चिन्गारी शिखा--
बनती महा ज्वाला प्रकट कर॥

बीज में रहता निरन्तर,
सुप्त एक विशाल तरुवर।
आत्मा परमात्मा में भेद;
कितना है परस्पर॥

रूप और स्वरुप का मिलना,
कभी अभिशाप है क्या।
प्रणय पथ पावन परम;
जग! सोच किञ्चित पाप हैक्या॥

सिन्धु सरिता लहर निर्झर,
विन्दु तक भी भेद जल के।
जा नहीं सकता कहीं भी;
नीर सागर से निकल के॥

गिन रहा हूँ मैं किसी की चिर प्रतीक्षा के प्रहर।
मानता हूँ निम्न मेरे प्रणय गीतों का स्वर॥

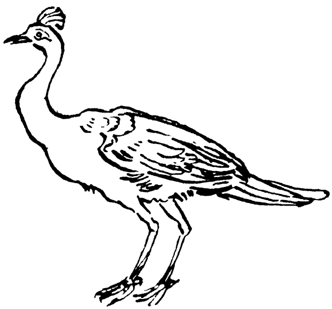

(४)

चित्र मैं हूँ, चित्र तुम हो;
चित्र जग के जीव सारे ।
कौन सा अपराध यदि,
मैं चित्र लिखता हूं तुम्हारे ।

चित्र जीवन के मिटाना,
चित्र जोवन के बनाना ।
मार्ग दोनों ही तुम्हारे;
प्रणय पथ के पास आना ।

है तुम्हारी भङ्गिमा में;
रूप कैसा क्या कहूँ में ।
स्वर मिला है जबकि मुझको
मौन भी कैसे रहूं में ।

चित्र सी ये द्रुम लतायें;
चित्र से ये चांद तारे।
कौनसा अपराध यदि,
मैं चित्र लिखता हूं तुम्हारे।

मुग्ध होता हूं जगत की,
देख कर ये चित्रशाला।
रूप पारा वार में होती—
तरंगित भाव माला।

चित्र की रचना तुम्हारे,
रूप का ही भेद पाना।
चित्र का आधार तुमसे,
एक मिलने का बहाना।

प्रकृति परिवर्तन तुम्हारी,
चितवनो के ही इशारे।
कौनसा अपराध यदि;
मैं चित्र लिखताहूँ तुम्हारे।

करदिया मैंने किसी भी,
चित्र का यदि कुछ विवेचन
वासना के स्रोत में ही;
बहगया कुछ दूर तक मन।

साध्य जैसे भी तुम्हारे,
रूप को है साधना ही।
दृष्टि पथ में भेद केवल,
किन्तु है आराधना ही।

सत्य यह, तुम और मैं हूं,
एक सरिता के किनारे।
कौन सा अपराध यदि,
मैं चित्र लिखताहूं तुम्हारे।

(१)

प्राण व्याकुल क्यों तुम्हारी
चिर प्रतीक्षा में न जाने।
दृग चले अज्ञात पथ—
सङ्केत पर पलकें बिछाने॥
दीप आशा का बुझा कर
जब हुआ गति हीन साहस।

शुष्क जब होने लगा था
कल्पनाओं का सुधा रस ॥
निकट पथ से चल दिये तुम
रह गया मैं नयन खोले ।
हिल सकी मेरी न जिह्वा
और तुम भी कुछ न बोले ॥
वेदना वह रह गई निःशेष
जिसकी दीर्घ आहें ।
खोजती फिरती सतत पद चिन्ह
पथ विस्मृत निगाहें ॥
काल की लहरें बहा कर
ले गई सङ्कल्प मन के ।
फिर न कोई तट मिला
ऐसे लगे झोंके पवन के ॥
दिन गया फिर रात आई
अवधियां फिर युग निरन्तर ।
और निकले दूर जीवन
मरण के दो चार अन्तर ॥
सोचती है बुद्धि तुमको
भूल जाने के बहाने ।
किन्तु लगती विफल आशा
सुप्त स्वप्नों को जगाने ॥
प्राण व्याकुल क्यौं तुम्हारी
चिर प्रतीक्षा में न जाने ॥

तूलिका मेरी उठी चित्रित
तुम्हारा रूप करने ।
चित्र पट पर जब लगी
दो चार रेखायें उभरने ॥
कल्पनायें जब चली उड कर
बहुत ऊँचो गगन तक ।
कर लिया तुमने विनत मुख
कर लिये आनत नयन तक ॥
उतर आई फिर कपोलों पर
विरल दो चार अलकैं ।
फिर उठो फिर झुक गई
चञ्चल हुई फिर चपल पलकैं ॥
अधर पुट पर एक स्मित रेखा
खिंची उल्लास भरती ।
फिर चलो मुख पर अलौकिक
मौन की छाया बिखरती ॥
दशन अवली छुप गई फिर
चांदनी जैसी चमक कर ।
चकित चितवन रह गई
बरसात के झर सी झमक कर ॥
वक्ष तक अञ्चल उठा कर
रुक गई कोमल अंगुलियां ।
अस्फुटित सी हास की
होने लगीं नव कुन्द कलियां ।

जब नजर तुमने उठाई
और मेरी ओर देखा ।
रुक गई थी तूलिका
फिर खिच न पाई एक रेखा ।।
लालिमा पश्चात् लज्जा की
लगी मुख पर उतरने ।
चित्र पट पर जब चलीं
दो चार रेखायें उभरने ।।

(३)

मुझे याद कर लिया करो,
जब वृक्षों में पतझड़ होता हो ।
मुझे याद कर लिया करो,
जिस समय किसी का दिल रोता हो ॥
मुझे याद कर लिया करो,
जब सूरज पर बादल छा जायें ।
मुझे याद कर लिया करो,
जब अम्बर की आखें भर आयें ॥
शुष्क सरोवर के तट पर जब,
तृषित पक्षियों का जमघट हो ।
भूल गया हो मार्ग मुसाफिर,
और भयानक निषा निकट हो ॥
जब जलती धरती पर झोंके
गरम गरम उठते हों लू के ।

दूर विपिन के कोने में,
जब करुण स्वरों में कोयल कूके ॥
आनत मस्तक, दीर्घ किसी के,
मुख से हो निश्वास निकलता ।
देखो यदि दावानल से,
तरु मूल बचा हो जलता जलता ॥
मुझे याद कर लिया करो,
जब कोई परदेसी एकाकी ।
बेचैनी से बचे दिवस,
गिनता हो घर जाने के बाकी ॥
झुलसे हुवे पतङ्ग शिखा पर,
युगुल पङ्ख जिनके हों टूटे ।
उजड़ी बस्ती में देखो,
अवशेष किसी खँडहर के फूटे ॥
मुझे याद कर लिया करो,
देखो जब कभी कुसुम मुरझाया ।
नीड विहग का टूटा, या
देखो सन्ध्या की ढलती छाया ॥
मुझे याद कर लिया करो,
जब आयें घोर अँधेरी रातें ।
याद कर लिया करो जहाँ,
होती हों विफल प्रेम की बातें ॥
जहाँ किसी की वज्र निराशा से—
हो आशालता विमर्दित ।
जब चकोर की आँखों से,
होजाय चन्द्रमण्डल अन्तर्हित ॥

मुझे याद कर लिया करो,
उर में घुटते हों गान किसी के।
मुझे याद कर लिया करो जब,
लुटते हों अरमान किसी के॥
मुझे याद कर लिया करो जब,
तेल बीत जाये दीपक का!
मुझे याद कर लिया करो,
जब कण्ठ सूख जाये चातक का॥

(४)

दूर रहना है युगों तक
एक पल भर का मिलन है।
अल्प जीवन के लिये
सन्सार यह कितना गहन है॥
वेग से आया निकट झन्झा—
पवन उन्मुक्त चलता।

पङ्ख तितली के सुकोमल
फूल की देखो मृदुलता ।।
कौन जाने हास अङ्कित भी
रहे मुख पर तुम्हारे ।
क्योंकि देखे हैं चमक कर
टूटते हमने सितारे ।।
दामिनी की ज्योति घन के
आवरण में खो गई थी ।
"चांदनी भी ढल गई" जब
रात फीकी हो गई थी ।।
तीव्रतम था वेग तटिनी का
कहां बरसात जैसा ।
अरुणिमा मिश्रित दिवस का
रंग था कब प्रात जैसा ।।
विफल ही रह जायेंगे
सन्सार स्वप्नों के हमारे ।
हो गये जब दूर फिर कब
मिल सके सरिता किनारे ।।
ये उलझते केश नत मुख
क्यों तुम्हारा खिन्न मन है ।
दूर रहना है युगों तक
एक पल भर का मिलन है ।।

(५)

उठ रहा आलिङ्गनों को, विकल मेरा बाहु पाश ।
आज कर दूंगा विरह की वेदनाओं का विनाश ।।
आँख खोलेगा चमक कर,
नवल शिशुसा जब प्रभात ।
मत्त इठलाता चलेगा;
उपवनों में मलयवात ।।

ओस में भीगा हुआ होगा,
कली का मृदुल गात।
बैंजनी रंग में रंगे होंगे;
लता के पात पात॥
नींद में लेते हुवे होंगे,
कुसुम अँगड़ाइयां।
आसमानी नीर पर;
होंगी अरुण परछाइयां॥
जब खुलेगी करवटें ले,
दूर्वादल की पलक।
भूमि पर आजायेगी जब;
किरण मालायें ढलक॥
देख लूंगा मैं तुम्हारी,
मदभरी यौवन छटा।
उमड़ती जैसे कि घबराई;
हुई सी घन घटा॥
दूध में डूबे हुवे से,
चाँदनी के मृदु कपोल।
कुमुदिनी के रुद्ध जब;
देंगे गुलाबी अधर खोल॥
जब चलेगी व्योम को छूने,
चपल सागर तरङ्ग।
शुभ्र हिम से आच्छादित;
जब कि होंगे शैल शृङ्ग॥
लोचनों में झपकियां लेगा,

प्रथम मधु मास जब ।
लाज की कुम कुम लिये;
होगा विकल उल्लास जब ॥
मोतियों के स्वप्न का होगा,
क्षणिक आभास जब ।
अधर पर अँकुरित होता:
देख लूंगा हास तब ॥
चांद से चित्रित गगन के,
नील अञ्चल छोर में ।
दीपकों जैसी चमकती;
तारकों की कोर में ॥
मेघ के उर पर मचलती,
दामिनी के कक्ष में ।
मल्लिका के प्रस्फुटित होते;
सुकोमल वक्ष में ॥
देख लूंगा सरल मृगियों,
की चकित सी दृष्टियां ।
कनक कलशों में छलकती;
मधुर अमृत वृष्टियां ॥
तीव्र सरिता की चपल,
उन्मादिनी सी धार में ।
क्षितिज को छूती हुई सी;
नाव की पतवार में ॥
फहरते से देख लूंगा,
गौर तन के मैं दुकूल ।

खिल रहे हों कुन्द के जैसे;
सहस्त्रों श्वेत फूल ॥
झूलते होंगे जहां द्रुम,
डालियों पर चपल कीर ।
गन्ध होगी दौड़ती;
होकर दिशाओं में अधीर ॥
कूकती होगी जहां आकुल,
हृदय से कोकिला ।
निर्झरों के नीर से;
अटखेलियां करती शिला ॥
मधुकरों का पीत मुख,
करता हुआ होगा पराग ।
जब कि चातक के;
कलेजे में लगेगी आग आग ॥
मौन के उर में सुनूंगा,
मैं तुम्हारी गीति लय ।
पीत पतझड़ के;
हृदय में से करूंगा कुसुम चय ॥
तिमिर के तन पर तुम्हारा,
देख लूंगा मैं प्रकाश ।
आज कर दूंगा विरह की, वेदनाओं का विनाश ।
उठ रहा आलिङ्गनों, को विकल मेरा बाहु पाश ॥

(६)

उस खिड़की के निकट खड़े रह कर,
कुरसी का लिये सहारा ।
तुमने अपने नयनों में भावों का;
अनुपम स्वर्ग उतारा ॥
प्रथम उषःकालीन अरुणिमा,
सञ्चित थी मुख के रंगो में ।
शोभा की चञ्चल तरङ्ग मालायें;
एकत्रित अङ्गों में
लज्जा का आवरण लिये थी,
अर्ध निमीलित विजड़ित पलकें ।
अस्त व्यस्त बिखरती वेणी;
झुकी कपोलों पर कुछ अलकें ॥
मंद हास की हृदय विमोहक,
एक झलक अङ्कित अधरों पर ।

अन्तर अन्तर पर विराम के—
चिन्ह टूटते हुवे स्वरों पर ॥
कितनी संख्यायें चित्रित,
होजाती चञ्चल दृग पातों की ।
ज्योति कनक कमलों की जैसी,
गौरिक विभा मृदुल गातों की ॥
अनलंकृत उन्नत ग्रीवा,
निश्चल आनत सी बाहुलतायें ।
बहती है प्रत्येक भङ्गिमा से;
सुन्दरता की सरितायें ॥
जब वियोग की घड़ियों का,
पल पल भी युग युग होजाता है ।
उसी रूप के स्वप्न जगत में;
मेरा अन्तर खोजाता है ॥

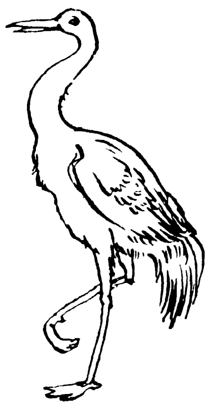

(७)

व्याकुल पक्षी सम भरे,
कण्ठ में विरह गान।
अम्बर पर ऊंचे उड़ते;
मेरे स्वप्न यान॥
ये प्रेम पाश मृदु लिये,
साथ में प्रियतम का।
ये हटा चले हैं मुख से;
अवगुण्ठन तमका॥
इनके पथ में बिखरे हैं,
कितने मुक्ता कण।
प्राणो को करते मूर्छित;
इ न के आ क र्ष ण॥
अन्तर पर छाजाते,
इनके व्याकुल वितान।

देने निकले ये चिर;
वियोग को मिलन दान ॥
ये पुलकित होते चले,
चांदनी रातों में ।
ये अरुण किरण माला;
बन गये प्रभातों में ॥
ये नव बसन्त की बने,
कभी प्रस्फुटित कली ।
इनके गीतों में गूँज उठी;
म धु क र अ व ली ॥
ये नयन कोर से टपके,
बनकर अश्रु बिन्दु ।
ये अङ्कित करने लगे,
धरा पर शरद इन्दु ॥
बनकर ये छाये नील;
गगन पर बादल दल ।
बन गये दूर्वा दल के;
मुख पर ओस तरल ॥
ये कर लेते प्रियतम का;
दुर्लभ स्पर्श सुखद ।
प्राणों में भर जाते,
स्मित की छाया उन्मद ॥
अधरों पर इनके हैं;
चुम्बन के चिन्ह लिखित ।

ये किसी अलौकिक,
सुन्दरता से हैं परिचित ॥
विस्मृतियों के अति मधुर,
पुलक पल के समान ।
अम्बर पर ऊंचे उड़ते;
मेरे स्वप्न यान ॥

(७)

जब प्रतीक्षा के पथों में,
एक भी दीपक नहीं था।
जब तुम्हारे स्वप्न का,
कोई मधुर रूपक नहीं था॥
अलस निद्रा से निषा थी,
हर तरफ धूमिल दिशा थी।

भावनायें मौन दृग,

सौन्दर्य अनुभव रिक्त मानो ॥

काव्य सरिता के सभी थे,

रस सरोवर तिक्त मानों ।

चन्द्र में कब चाँदनी;

ऋतु राज में सुषमा कहां थी ॥

विन्दु को मोती बताने,

के लिये उपमा कहां थी ।

जब न कहने को हृदय के,

पास में कोई कथा थी ॥

जब न उतरी अश्रु कण के,

रूप में कोई व्यथा थी ।

चेतना की बह चली,

प्रति रोम में अव रुद्ध धारा ॥

क्षुद्र चञ्चल लहर ने उठ,

छू लिया जैसे किनारा ।

जब तुम्हारी याद का,

कोई न बच पाया सहारा ॥

एक नूतन भाव माला,

चित्र लाया था तुम्हारा ॥

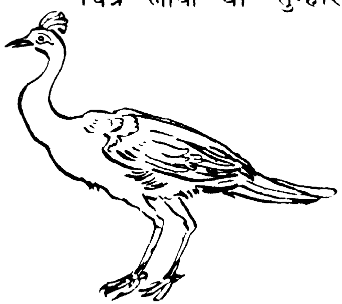

(६)

एसा भी कोई घोर,
अशुम होता है दिन।
मुख चन्द्र तुम्हारा;
रहता है अत्यन्त मलिन॥

अधरों पर होता प्रकट,
न तब मधु भरा हास।
वाणी से रहता है;
मानो वञ्चित विलास॥

होते न दिव्य दर्शनों से,
द्युति के प्रकट सुमन ।
हों पङ्क बद्ध से विजडित
मनों दृग खञ्जन ॥

तब भृकुटि युगों पर,
बार बार आता है बल ।
मुख से जाता है दीर्घ;
एक निश्वास निकल ॥

भुज युग पर अस्त व्यस्त,
हुआ किञ्चित दुकूल ।
क्षण क्षण में जाता;
पृष्ठ भाग पर स्वतः झूल ॥

मुख झुक कर आजाता है,
कोमल कर तल पर ।
हो कमल कोष जैसे;
शोभित नूतन दल पर ॥

गिर कर कपोल तक,
आजाते हैं जो कि बाल ।
वे फैंक दिये जाते हैं;
ऊपर को उछाल ॥

फिर मृदु पलकों पर,
रह जाते हैं पलक पडे ।
नव शुक्ति सम्पुटों के
युग हों जैसे कि जडे ॥

कुछ रोष भरा सा रहता है,
कोमल स्वर में।
गम्भीर मौन केवल;
प्रश्नों के उत्तर में॥

स्वयमेव कदाचित,
कभी हंसी आजाती है।
आशा मेरी वाञ्छित;
पदार्थ पा जाती है॥

(१०)

लोचनों में प्रथम परिचय की झलक सी छारही है ।
व्योम पट से चाँदनी जैसे उतर कर आरही है ॥
बैठ कर कितने पलों के पङ्ख पर ।
विकल स्मृतियों के अनेकों रूप धर ॥
हृदय तट पर तारकों की स्मित किरण बिखरा रही है ।
कल्पना की मेघ माला बिजलियां चमका रही है ॥

कुछ प्रकम्पित से स्वरों में झूलती।
मिलन की आशालता सी फूलती॥
दूर से उन्माद मिश्रित रागिनी सी गा रही है।
चिर प्रतीक्षा के पलों में रस सुधा बरसा रही है॥
रूप के मदिरा भरे उल्लास का।
प्राण विस्मृत से किसी मधु मास का॥
स्वप्न लेकर भाव वाही चित्र लिखती जारही है।
मौन की प्रतिमा क्षितिज के अङ्क में शरमा रही है॥
विनत पलकें कालिमा के कलश भर।
दीर्घ अलकें वक्ष से नीचे उतर।
यामिनी की तिमिर छाया दिवस को दिखला रही है।
धूम लेखा में शिखा जैसे कि शोभा पा रही है॥
सूक्ष्म सा लक्षित प्रथम यौवन चपल।
चाँद को मानो छिपाये सिन्धु जल॥
भावना सुधि हीन होकर नींद में अलसा रही है।
लोचनों में प्रथम परिचय की झलक सी छारही है।

(११)

उठे उमड वर्षा के बादल,
चमकीं चपल विजलियां।
किसलय आये नव बसन्त के,
हुईं प्रस्फुटित कलियां॥
खिली चाँदनी रातें फिर,
छुप गया चाँद बादल में।
प्रकृति पटल पर बदल गई,
कितनी सुषमां पल पल में॥
पर तुम रहे दूर आंखों से,
रह कर अधिक निकट तम।
कभी व्यथा कह सके न,
उर की दरद भरी तुम से हम॥
व्याकुल अन्तर से न,
निकल पाईं दो दिल की बातें।

रहे छुपाये आजीवन,
हम आंखों में बरसातें ।।
झुकालिया प्रत्येक तुम्हारे,
निर्देशों पर मस्तक ।
रहे दबाये अरमानों को,
आई प्रलय जहां तक ।।
विजडित रहे अधर जिह्वा पर,
लगे मौन के ताले ।
पलकों पर पड गये प्रतीक्षा,
करते करते छाले ।।
ध्वनियां पद चापों की,
सुनते रहे, देखते राहें ।
दीप बुझ गया आशा का;
फीकी पड गई निगाहें ।।

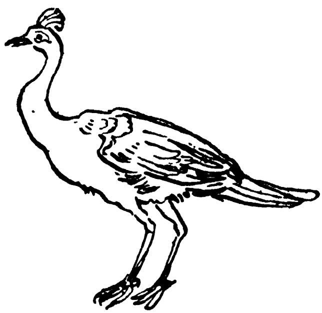

(१२)

चल दिये तुम चल दिये हम,
धडकते दिल में भरे अरमान लेकर ।
चल दिये तुम चल दिये हम;
एक रूठी सी हुई मुसकान लेकर ॥

नयन कहते ही रहे कुछ,
मूक अन्तर की कहानी ।
अधर देते रह गये थे' फिर;
न मिलने की निशानी ॥

पथ असीम अनन्त पल,
तब भी लिये आशा हृदय में ।
सृष्टि से हम जा रहे हैं;
प्रेयसी ! उठ कर प्रलय में ॥

चल दिये तुम चल दिये हम,
कुछ उदासी से भरा अवसान लेकर ।

चल दिये तुम चल दिये हम;
छिन्न वीणा के स्वरों का गान लेकर ॥

चरण गिरते ही रहे पीछे,
उठाये जो कि आगे।
कामनाओं के विफल;
कितने न जाने भाव जागे ॥

नियति की विप्लवमयी,
गति में सिमट कर बह गये हम।
छा गया ऐसा निबिडतम;
खोजते ही रह गये हम ॥

चल दिये तुम चल दिये हम,
पद दलित होता हुआ अभिमान लेकर।
चल दिये तुम चल दिये हम;
पी न सकते वह मधुर मधु पान लेकर ॥

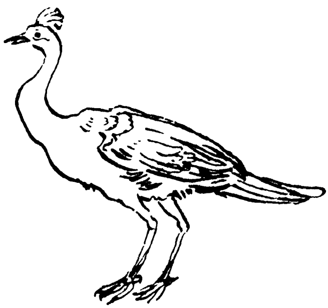

(१३)

तुम नहीं जानते एक सङ्केत ले.
आरहा जारहा है हमारा मिलन ।
तुम नहीं जानते रूप की साधना;
कर रही कल्प से लोचनों की लगन ।।

आरहा था दिवस एक आशा लिये,
शून्य के अङ्क में खोगई यामिनी ।
मेघ का आर्त्त स्वर सुन सकी भी नहीं;
आप से आप ही जल गई दामिनी ।।

तुम नहीं जानते कब प्रणय की प्रबल,
वेदना से गया प्राण पाषाण बन ।
तुम नहीं जानते ले अमर साधना;
अश्रु कण में छिपी है विरह की जलन ।।

किस अनागत वधू के विरह में खडे,
शैल के वक्ष से फूट निकला अनल ।
कह न पाया किसी से हृदय की व्यथा;
तब उबलने लगा शोक से सिन्धुतल ।।

तुम नहीं जानते उस घडी का पता,
एक होकर रहे किन्तु थे भिन्न तन ।
तुम नहीं जानते उस दिवस का निशां;
खोजता था तुम्हें एक बेचैन मन ।।

बोल पाये न सम्मुख तुम्हारे कभी,
पर ध्वनित कर दिये मूक धरणी गगन ।
तप्त उच्छ्वास मेरे लिये साथ में;
घोर विक्षिप्तसा बन गया था भवन ।।

मैं तुम्हारे निकट आ सकूंगा कभी,
जानती थी बहुत पूर्व से काल गति ।
और लेकर बहुत दूर जाती हुई;
यह खडी है हमारे निकट ही नियति ।।

कौनसा जन्म था वह कि सञ्चित हुई,
तीव्र ज्वाला जगाती हुई चाह थी ।
थी युगों तक नहीं एक क्षण के लिये;
पर तुम्हारी हमारी बनी राह थी ।।

तुम नहीं जानते छोड़ कर पुष्प शैया,
हृदय ने किया कण्टकों पर शयन ।
तुम नहीं जानते मैं नही जानाता;
क्यों तुम्हीं मैं हुवे जा रहे लय नयन ।।

(१४)

दूर तक तुम जा रहे हो, मैं निकटतम आ रहा हूँ ।
मौन तुम पाषाण जैसे, मैं अकेला गा रहा हूँ ॥

यह असम्भव है कि जलता—·
शलभ ही दीपक न जलता ।
यह असम्भव है कि केवल;
एक उर में प्रेम पलता ॥

एक दिन हिल कर रहेगा,
कठिनतम आसन तुम्हारा।
व्योम से आजायगा नीचे;
उतरता मन तुम्हारा॥

वज्र को कोमल धरातल के निकट तक ला रहा हूँ।
दूर तक तुम जा रहे हो मैं निकटतम आ रहा हूँ॥

खींच लाने के लिये तत्पर,
तुम्हें उच्छ्वास मेरे।
गिन रहे पद ध्वनि तुम्हारे;
आगमन की आस मेरे॥

कूक जब केकी उठेंगे,
क्या न बरसेंगे सजल घन।
तीव्रता ही ताप की लगती;
बरसने विन्दु बन बन॥

आँधियों में पवन की गति को थकित सा पा रहा हूं।
दूर तक तुम जा रहे हो मैं निकटतम आ रहा हूं॥

पहुँचते हैं क्या न तुम तक,
विकल आवाहन हृदय के।
भृकुटियों पर बल तुम्हारे;
चिन्ह हैं मेरी विजय के॥

याद बन कर आ रहे हो,
स्वप्न बन कर जा रहे हो।
किन्तु भावों में निरन्तर;
रोष ही दिखला रहे हो॥

मौन की दीवार दो अक्षर,
कभी मुख से कहेगी ?
यह प्रतिज्ञा द्वैत की;
उर में अड़ी ही क्या रहेगी ॥

रूप का वैभव अलौकिक रूप को दिखला रहा हूं ।
दूर तक तुम जा रहे हो मैं निकटतम आ रहा हूं ॥

(१५)

थे अलस अङ्ग गिरता हुआ सा गमन,
कुछ बिखरते हुये से शिथिल से वसन ।
कौन से स्वप्न को रूप देने उठे;
नींद के अङ्क में झूलते से नयन ॥
केश उन्मुक्त बनकर तिमिर पुञ्ज से,
मुख प्रभा पर चले आ रहे हैं उतर ।

बादलों की विपुल एक सेना चली—
जा रही है उमडती इधर से उधर ॥
ले अरुण कञ्ज कौमार्य के वक्ष से,
मूर्त सी हो उठी मञ्जु यौवन प्रभा ।
खिल उठे जब अधर हास सञ्चित किये;
आगई भूमि पर तारकों की बिभा ॥
दृष्टि के साथ उडती चली जा रही,
बगुलियों की कतारें मधुप मालिका ।
नापती सी क्षितिज की मलिन नीलिमा;
थी चकित सी खडी युग्म मृग बालिका ॥
मौन सोती हुई एक कवि कल्पना,
खण्डिता सी खडी देखती थी विकल ।
दूर पथ से चले आ रहे थे उठे;
व्योम की ओर से मोतियों के महल ॥
हाथ में ले पुनः हेम किरणें चली,
अप्सरायें अनेकों जगाती निषा ।
आ रही थी बिछाती अरुण के निकट;
चादरें चाँदनी की समुज्ज्वल दिशा ॥
था खडा एक उन्माद आँसू भरे,
ओसकण के हृदय पर सुमन चाप ले ।
सोरही थी युगों की प्रबल कामना;
पास ही मौन का घोर अभिशाप ले ॥
हंस रहे थे किसी की क्षणिक मृत्यु पर,
मधु भरे कण्ठ में से निकलते वचन ।
वेदना का अतुल दान देने चले;
ये दृगों में उलझते हुवे से नयन ॥

(१६)

तुम्हें याद आई न मेरी, मिटे युग, दिवस खोगये, दीर्घ रातें गई ढल ।
तुम्हें याद आई न मेरी, सहस्त्रों उठी कामनायें हृदय में गई जल ।।
न जीवित रहे स्वप्न भी वे मिलन के ।
न दो दिन हुवे सत्य संकल्प मन के ।।
भरे आख में नींद व्याकुल सितारे ।
धरा सो चुकी है गगन मौन धारे ।।
विकल बह रही स्त्रोत की क्षीण धारा ।
कहीं छटपटाता नदी का किनारा ।।
शिला पर चला है पवन शिर पटक कर ।
रहा श्वास केवल हृदय में अटक कर ।।
तुम्हें याद आई न मेरी उठे हैं घुमडते हुवे से भरे नीर बादल ।
तुम्हें याद आई न मेरी पिकी का हुआ जा रहा कण्ठ बेचैन पल पल ।।
उठाई पलक मन्द से मुस्कुराये ।
चले मौन चितवन चुराये चुराये ।।

छुपाये नयन थे चमक दामिनी की।
लुटाये अलक थी छटा यामिनी की॥
कली खिल गई हँस पडी या कि शबनम।
धवल चाँदनी देखते ही रहे हम॥
लिये मौन मुख पर भरे दर्द दिल में।
लगे डूबने लोचनों के सलिल में॥

तुम्हें याद आई न मेरी उठे आंख से जब निराशा भरे कल्पना दल।
तुम्हें याद आई न मेरी तरल ओसकी बूँद पहिली किरण से गई गल॥

रही शेष विस्मृत हुई सी कहानी।
रुदन दे चले एक अपनी निशानी॥
क्षितिज पर अडी ही रही दृष्टि जब तक।
न छाया प्रलय का तिमिर पुञ्ज तब तक॥

हृदय में किये कोटि सङ्केत सञ्चित।
तुम्हारी कृपा कोर से किन्तु वञ्चित॥
न आये न आये निकट तुम न आये।
रहे दूर अञ्चल बचाये बचाये॥

तुम्हें याद आई न मेरी तृषा से चिता बन गया चातकी का हृदय तल।
तुम्हें याद आई न मेरी विहग थकगया था बहुत दूर आकाश में चल॥

दृगों में ढुलकते रहे स्वप्न सीकर।
तृषित ही रहे कल्पना सिन्धु पी कर॥
प्रतीक्षा पलों ने गुंथी भाव माला।
विरह की उठी व्योम तक तीव्र ज्वाला॥
मृदुलता कमल की गरल की विषमता।
प्रलय सृष्टि की ले उठे साथ समता॥

प्रवाहित मधुर रूप रस था हृदय में।
प्रणय प्राण में प्राण अर्पित प्रणय में ॥

तुम्हें याद आई न मेरी मलिन पड गये थे दिशा के दशों कक्ष निर्मल।
तुम्हें याद आई न मेरी, बहाती रही चादनी ज्योति के अश्रु अविरल॥

(१७)

आधी रात गगन के ऊपर,
चमक रहे हैं अगणित तारे ।
खुली विकल आंखों के सम्मुख,
निकल रहे हैं चित्र तुम्हारे ॥
बुझे चले जाते हैं प्रति पल,
जलते , दीपक प्रथम निशाके ।
उठते आते हैं अन्तर में, किन्तु,
अरुण बादल आशा के ॥
ये कल्पना चित्र कितने मोहक,
कितने विचित्र आकर्षक ।
प्राणों को मूर्छित करदेते,
विविध भाव सौन्दर्य प्रदर्शक ॥
हास भरे कुछ लास भरे,
मानो माधुर्य विकास भरे कुछ ।

निष्ठुरता की लिये भावना,
मृदुता का आभास भरे कुछ ॥
चञ्चल और मुखर कितने,
लज्जा में अधिक विलीन हुवे कुछ ।
उठे उग्रता की सीमा तक,
और अकारण दीन हुवे कुछ ॥
कहीं गुलाबी फूलों का रंग,
हरसिंगार की कहीं धवलता ।
शामलता सागर के जल की,
कहीं चन्द्रिका की उज्ज्वलता ॥
मादकता का एक आवरण,
यौवन का संसार लिए कुछ ।
पतझड़ की जैसी हत शोभा,
नव बसन्त का भार लिये कुछ ॥
इनमें अङ्कित विरह वेदना,
और मिलन से भरे पुलक पल ।
एक एक रेखा में बहते,
अश्रु हास दोनों ही अविरल ॥
चांद छुपा बादल के नीचे,
तिमिर मौन रजनी का धारे ।
आधी रात गगन के ऊपर,
चमक रहे हैं अगणित तारे ॥
खुली विकल आंखों के सम्मुख,
निकल रहे हैं चित्र तुम्हारे ।

(१८)

दृष्टि मार्ग से कैसे तेरे,
उन्नत वातायन तक आऊँ ।
तेरी पलकों के कम्पन पर,
कैसे अपना हृदय बिछाऊँ ॥
स्मृतियों का सन्सार मनोहर,
उत्सुकता के अन्तर में भर ।

घोर निराशा की रातों में,
पावस की घन बरसातों में ॥
उल्लङ्घन करता विघ्नों को,
तीव्र नदी नद विजन वनों को।
सम्मुख युग जैसे लम्बे पल;
थककर रुक जाता हूँ चल चल

एसी घोर विवशता के कारण,
मैं किस प्रकार दिखलाऊं ।
दृष्टि मार्ग से कैसे तेरे,
उन्नत वातायन तक आऊं ॥

उषा और सन्ध्या की गति में,
अन्तर किञ्चित नहीं नियति में।
ऋतुओं का होता परिवर्तन,
मास दिवस करते हैं नर्तन ।
क्षण विश्राम नहीं जीवन को,
आकर्षण कितने हैं मनको ।
पङ्ग हीन साहस को लेकर,
व्यर्थ सान्त्वनायें दे दे कर ॥

लिये विफल अभिलाषाओं को,
कब तक लौट लौट कर जाऊं
दृष्टि मार्ग से कैसे तेरे,
उन्नत वातायन तक आऊं ॥

(१६)

जीवन के अन्धकार को दी,
चञ्चल प्रकाश की एक किरण ।।
तुमने बिखराये मूक भावना,
के अन्तर में हीरक कण ।
प्रज्वलित किये पथ में अगणित,
आशाओं के दीपक उज्ज्वल ।।
खिल पडे अनेकों मानस के,
अवरुद्ध अधर कमनीय कमल ।
मैंने देखा तब सन्ध्या के,
मुख पर कम्पित सा मन्द हास ।।
मैंने देखा रजनी के अन्तर में,
द्युति का लीला विलास ।
मैंने देखा तब क्षुद्र तारिकाओं में,
शोभित शशि मण्डल ।।

मैंने देखा तब शुष्क सरोवर में,
तट तक लहराता जल।
पतझड़ के पीत पल्लवों में,
अवतरित हुआ देखा वसन्त ॥
संकल्प मनोहर स्वप्नों के,
ले उड़ी कल्पनाएँ अनन्त।
मैंने देखे कण्टकित काननों में,
विकसित नूतन निकुञ्ज ॥
कण कण में पाया एक अलौकिक,
रूप राशि का तेज पुञ्ज।
कल्पों की प्रणय साधना को,
तुमने पीडा का दिया भार ॥
उठ चला प्रतिज्ञा का अम्बर के,
अञ्चल तक मादक प्रसार।

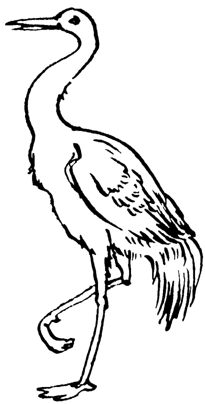

(२०)

बादलों में गान रोते हैं गगन के ।

क्षीण होती ही गई किरणें,

सुधाकर की प्रति क्षण ।

प्रात होने तक रहे दो चार;

बाकी ओस के कण ॥

रूप किस का देखने को,
कल्प से उत्सुक सितारे।
रात रोती है अनेकों;
जन्म से कर युग पसरे ॥

सिसकियां सी कण्ठ में उठती पवन के।
बादलों में गान रोते हैं गगन के ॥

एक पन्थी पदतलों के,
छोड कर जो चिन्ह जाता।
दूसरा आकर उन्ही की,
लिखित रेखायें मिटाता ॥

वृक्ष जडता ले युगों की,
आंख से आंसू गिराते।
निकट तम पाषाण दो हैं,
पर गले मिलने न पाते ॥

सो गये सङ्केत अन्तर में बिजन के।
बादलों में गान रोते हैं गगन के ॥

पल्लवों को पीत होते—
देख किस लय मुस्कुराये।
किन्तु शाखा ने विरह के,
दृष्टि में दीपक जलाये ॥

कोकिलों के कण्ठ में जब,
विकल सा होने लगा स्वर।
जग उठी हिम पात की,
छाया प्रलय सी गात में भर ॥

चिन्ह मिलते हैं न मधुकर को सुमन के।
बादलों में गान रोते हैं गगन के॥
एक क्षण भी नींद लेकर;
मैं न सो पाया निषा में।
वेदना के स्वर भरे थे,
तीव्र से चारों दिशा में॥

एक आतुरता चली है,
प्राण में हो प्रज्वलित सी।
जन्म जन्मो की व्यथायें,
होगई हैं संकलित सी।

मौन उठते रह गये सङ्कल्प मनके।
बादलों में गान रोते हैं गगन के॥

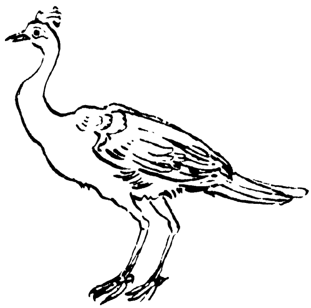

(२१)

है मिलन वरदान अथवा शाप
निकट भी रहकर रहे जो;
दूर जीवन से मरण तक।
जो हृदय पथ पर चले पर,
दृग न छू पाये चरण तक॥
रुदन को ही जान पाये
जो निरन्तर हास मेरा।

मूक प्राणों का बना बलिदान;
चिर इतिहास मेरा॥

शेष केवल एक पश्चाताप।
है मिलन वरदान अथवा शाप॥

भग्न उर देखा किया तट,
लौट कर चल दी लहर तब।
युग निकलते ही गये पर,
मिल सका बीता प्रहर कब॥

टूट शाखा से चला सन्तप्त,
हो पल्लव अकेला।
ऋतु बदलती ही गई पर,
फिर न आई मिलन वेला॥

पुण्य के उर में छुपा क्या पाप।
है मिलन वरदान अथवा शाप॥

गले मिल पश्चिम दिशा से,
विलग होता सूर्य प्रति दिन।
रह गई व्याकुल चकोरी,
पूर्ण शशिकी किरण गिन गिन॥

चक्रवाकों का मिथुन,
बोला कि प्रातः फिर मिलेंगे।
फूल लतिका से लगा कहने,
कि सम्भव फिर खिलेंगे॥

हर्ष का पल बन गया परिताप।
है मिलन वरदान अथवा शाप॥

देखता ही रह गया तरु,
कब उड़ी विहगी न जाने।
बिन्दु नभ से जब गिरी,
चातक लगा आंसू बहाने॥

खो गया जो सिन्धु में,
वह सीप ने मोती न पाया।
आयु रोती ही रही फिर,
लौट कर यौवन न आया॥

श्रवण पुट गिनते रहे पद चाप।
है मिलन वरदान अथवा शाप॥

(२२)

आज भी चिन्गारियों के.
चित्र अन्तर में उभरते ।
एक आशा का निराशा के;
हृदय में भाव भरते ॥

खचित उर में प्रस्फुटित की,
अधर पर मुस्कान एसी ।

अब न रुकती कण्ठ में ध्वनि;
छेड दी है तान ऐसी ॥

कण्टकित सा दूर पथ,
संकेत से केवल दिखा कर ।
थकित से चुप होगये क्यों;
प्रथम स्वर में स्वर मिला कर ॥

प्रति-ध्वनियां गूंजती हैं,
विकल सी होती पवन में ।
जो बसाया था लगाई;
आग तुमने उस भवन में ॥

छोड कर पद चिन्ह पहिचाने,
हुवे जीवन पटल पर ।
जो न मिटती लिख चले;
एसी कहानी हृदय तल पर ॥

एक चितवन से क्षणिक,
रूठे हुवे मन को मनाते ।
जा रहे हो सिन्धु को;
सीमा रहित सागर बनाते ॥

चल रहा अज्ञात तम—
मिश्रित दिशा के मैं सहारे ।
मौन में भी उठ रहे हैं;
मन्द आवाहन तुम्हारे ॥

(२३)

कोकिल के मीठे स्वर, वसन्त से मोल लिये जाते हैं क्या ।
आवाहन करने से वर्षा के मेघ चले आते हैं क्या ॥

जब गन्ध लुटाती सुमन राशि,
क्या दे देता सन्सार उन्हें ।
तारक देते रहते प्रकाश;
कितना मिलता आभार उन्हें ॥

क्या कभी चाहती कोई श्रम,
सरिता अपने बहते जल का ।
होता है कोई स्वार्थ चादनी के;
शुचि शीतल अञ्चल का ॥
उडते पक्षी अम्बर से लेकर मूल्य कभी गाते हैं क्या ।
नव दिवस किसी आशा से उज्जवल किरणें बिखराते हैं क्या ॥
तरुवर अपनी छाया देकर,
लेते हैं क्या प्रतिकार कभी ।
दो शब्द विनय के अवनीतल;
करता है क्या स्वीकार कभी ॥
वक्षस्थल पर चिन्हित चरणों से,
मार्ग चाहता है क्या फल ।
अपनी सौन्दर्य सुधा देकर;
क्या ले लेता प्रस्फुटित कमल ॥
सर्वस्व लुटा ने जाते जो, वापस भी कुछ लाते हैं क्या ।
जो हृदय समपर्ण करते हैं, बदले में कुछ पाते हैं क्या ॥

(२४)

जो वृहत व्योम प्रसार सम,
जो विन्दु के आधार सम ।
जो बद्ध सीमा मे न रहती,
स्वप्न के सन्सार सम ॥
जो कण्ठ भर हंसती नही;
जों आख भर रोती नहीं ।
पर एक क्षण अन्तर पटल,
पर चैन से सोती नहीं ॥
इन कामनाओं के रुदन संगीत, मैं ।
कैसे लिखूं, कैसे लिखूं, कैसे लिखूं ॥
यह रूप मय रस की तृपा,
जो सुरभि मृग की सी दिशा ।
उठती रही है प्रति दिवस,
बढ़ती रही है प्रति निपा ॥

देखूं न, पश्चाताप है,
यदि देखलूं तो पाप है।
दो चक्षुओं की चपलता;
कितना लिये परिताप है॥
इन भावनाओं के व्यथा मय चित्र, मैं।
कैसे लिखूं, कैसे लिखूं, कैसे लिखूं॥
मैं देखने आतुर झलक,
युग से रहा खोले पलक।
पर तुम न आये निकट,
मेरे कल्पना विस्तार तक॥
करने उठे थे स्पर्श कर,
होकर क्षितिज तक अग्रसर।
पर एक चुम्बन के लिये,
भी रह गये व्याकुल अधर॥
आराधनाओं के अमर आभास, मैं।
कैसे लिखूं, कैसे लिखूं, कैसे लिखूं॥
आता रहा उन्माद ले,
जाता रहा अवसाद ले।
भ्रमता रहा चिर काल तक,
भूली हुई कुछ याद ले॥
कितने हृदय पर भार थे,
टूटे हुये आधार थे।
तब भी तुम्हारी नियति के,
आघात सब स्वीकार थे॥
इन साधनाओं के विषद इतिहास, मैं।
कैसे लिखूं, कैसे लिखूं, कैसे लिखूं॥

(२५)

क्रोध से तुमने कहा था, चित्र मेरे क्यों बनाये ।
और मैं था मौन कुछ उद्गार अन्तर में छिपाये ॥

बोलता क्या पास मेरे,
मानवी भाषा नहीं थी ।
पिघल जाने की मुझे:
पाषाण से आशा नहीं थी ॥

कार्य क्या सन्सार के ऐसे,
न. जो होते अकारण ।
भूमि करती किस लिये,
निज वक्ष पर यह सृष्टि धारण ॥

कुमुद खिल जायें न क्यों जब,
चांद से चित्रित निषा हो ।
कर उठें कलरव न खग, क्या,
जब अरुणिमा मय दिशा हो ॥

ज्वार सागर में उठे तब,
हो न कैसे लहर चञ्चल।
वेग कितना रोकले निज,
बाहुओं में स्रोत का जल॥

अधर युग पर जब तुम्हारे,
स्मित छटा हो जाय सञ्चित।
हो उठें आकार कितने,
मधुरता के साथ अङ्कित॥

चांदनी बन बिखरती हो,
अङ्ग की शोभा अपरिमित।
चितवनें करने लगें,
साकार मादकता समर्पित॥

रूप के विस्तार तब क्या,
मौन रेखा में न आयें।
एक पारावार कब तक,
क्षीण अन्तर में छिपायें॥

तूलिका कैसे रुके तब
कल्पना के रंग भरती।
भावनायें बह न जायें,
क्या अलौकिक रूप धरती॥

दोष मेरा क्या बतादो आज है अनुरोध इतना।
अल्प सा अपराध यह उस पर तुम्हारा क्रोध इतना॥

---

(२६)

वेदना को एक पल मिलता न रुकने का सहारा।
उस मिलन की याद का भी आज टूटा है किनारा॥

दो नयन उडने लगे जब,
एक निर्धारित दिशा में।
हास की दो ज्योति चमकीं,
मौन की काली निशा में॥

परस्पर दो भावनाओं ने,
पुनः कर युग उठाये।
हट गये पर दूर दोनों,
बाहु जितने पास आये॥

टूटते स्वर में उठी थी एक,
ऊंची लय गगन तक।
सुन सका पद चाप उसकी,
पर न अन्तर का पवन तक॥

कामनाओं का चला,
पश्चात् उल्कापात होता।
एक अन्तर देखता था,
एक पर आघात होता॥

शुष्क बादल में हुई जैसे बरसती नीर धारा।
उस मिलन की याद का भी आज टूटा है किनारा॥

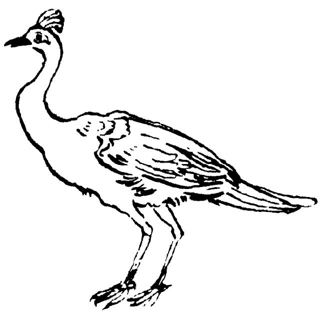

(२७)

हास बिखराती अधर पर,
आरहीं घड़ियां मिलन की ।
साथ में लेकर अनेकों,
भावनायें विकल मनकी ॥

तारिकायें आंख से आंसू,
बहाती पास आकर ।

कुछ सुनाती प्रज्वलित उर,
के सुलगते गीत गाकर ॥
पवन जाता निकल, करता,
स्पर्श रजनी के हृदय को।
व्योम भर लेता उदर में,
शून्य की गम्भीर लय को॥
चाप सुनता मन्द तब,
सुकुमार चरणों की चपल में।
भूमि उर पर देखता;
बिखरे हुये कोमल कमल में॥
हास में उडती दिखातीं,
बगुलियों की सी अवलियां।
चांदनी में तैरती हों,
या धवल द्युति कुन्द कलियां।
लुप्त हो जाता दृगों में,
एक पुञ्ज प्रकाश मानों।
देखता हूं भूमि पर,
उतरा हुआ आकाश मानों॥
मूक अन्तर में तिमिर के,
विकल तरकी बात मेरी।
दिवस का अलोक चित्रित,
कर रही है रात नेरी॥

(२८)

जला करता हृदय तब भी किसी अज्ञान—
पथ से एक आशा की किरण आती ।
जला करता हृदय तब भी तुम्हारी याद;
अन्तर में सुधा के सिन्धु भर जाती ।।

जला करता हृदय तब भी सहस्त्रों,
चाँदनी रातें नयन पथ में उतर आती ।
जला करता हृदय तब भी तुम्हारी एक ही;
मुस्कान शीतल गात कर जाती ।।

तिमिर में डूबते तारक दलों में,
प्रखर द्युति के दीप जलते हैं ।
प्रबल ज्वाला मुखी के पास निर्मल;
नीर के निर्झर निकलते हैं ।।

प्रकट होते सुकोमल अरुण किसलय,
कठिनतम चट्टान के उर से ।
बसा करता बृहत सन्सार;
सुमनों का अकिञ्चन एक अकुँर से ॥

भयानक मृत्यु के मुख में छुपी है,
प्रज्वलित सी ज्योति जीवन की ।
सिंची है पतझड़ों के कक्ष में;
तसवीर शोभा युक्त उपवन की ॥

तुम्हारे रोष में भी देखता हूं,
छलकते से, मैं कृपा के कण ।
तुम्हारी घोर निष्ठुरता किया;
करती मृदुलता ही मुझे अर्पण ॥

निरन्तर मौन में सुनता रहा हूँ,
एक व्याकुल प्राण की भाषा ।
तुम्हारे दूर रहने पर उठा करती;
मिलन की एक अभिलाषा ॥

प्रतीक्षा यदि मुझे उर मे तुम्हारे,
क्या न होगा एक भी कम्पन ।
मुझे विश्वास बह जाते कभी;
संकेत से पाषाण पानी बन ।

जला करता हृदय तब भी तुम्हारे
कण्ठ की झन्कार श्वासों में बिखर जाती ।
जला करता हृदय तब भी तुम्हारी;
चित्र छाया कल्पना पट पर उभर आती ॥

जला करता हृदय तब भी तुम्हारी,
एक चितवन स्वर्ग को साकार कर जाती।
जला करता हृदय तब भी तुम्हारी याद;
अन्तर में सुधा के सिन्धु भर जाती॥

मुझे पूर्ण अनुराग भरा,
निष्ठुर न तुम्हारा प्यार चाहिये ।
मुझे न किञ्चित अतुल,
तुम्हारी अनुकम्पा का भार चाहिये ॥
मेरे दर्द भरे अन्तर को,
स्मृतियों का आधार चाहिये ।
स्वप्न तुम्हारी रूप सुधा का,
नयनों में साकार चाहिये ॥

विविध कल्पनाओं के,
चित्र बनालूं सरस कल्पना पट पर ।
तुम्हें देखता रहूँ खड़ा,
अनिमेष विकल आशा के तट पर ॥
चिर वियोग की दीर्घ अवधियां,
गिनता रहूं मौन हो पल पल ।
मन्द मन्द पद चापों की,
ध्वनियों का एक मात्र ले सम्बल ॥

मुझे तुम्हारे अधरों का,
उल्लास भरा उद्‌गार चाहिये ।
मुझे तुम्हारे यौवन का उन्माद,
भरा सन्सार चाहिये ॥
तूफानों से टकराती अवलम्ब,
हीन पतवार चाहिये ।
जो मेरा अस्तित्व डुबादे;
मुझको वह मझधार चाहिये ॥